IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महात्मा बुद्ध के उपदेशों में निहित दार्शनिक विचार – एक झलक

नवल किशोर

बुद्ध के उपदेशों में उनके दार्शनिक विचार की झलक दिखाई देती है। ये हैं– 1. प्रतीत्यसमुत्पाद, 2. क्षणिकवाद, 3. अनात्मवाद।

1. **प्रतीत्यसमुत्पाद** – किसी भी कार्य के कारण अवश्य होते हैं। किसी कारण के बिना किसी भी घटना का आविर्भाव नहीं हो सकता। बुद्ध के कार्य–कारणवादी सिद्धान्त को प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। प्रतीत्य अर्थात् किसी वस्तु के उपस्थित होने पर समुत्पाद अर्थात् किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति होती है। "बुद्ध पूर्ण नित्यवाद एवं पूर्ण विनाशवाद इन दोनों एकान्तिक मतों को छोड़कर मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं।"[1] वस्तुओं का अस्तित्व है कि वे नित्य नहीं हैं। उनकी उत्पत्ति अन्य वस्तुओं से होती है।

प्रतीत्यसमुत्पाद को बुद्ध इतना महत्त्वपूर्ण मानते थे कि उन्होंने इसका नाम दिया 'धम्म' (धर्म)। "इस धम्म की तुलना बुद्ध एक सोपान से करते हैं। इस पर चढ़ कर कोई भी मनुष्य बुद्ध की दृष्टि से संसार को देख सकता है। हमारे दुखों का कारण यह है कि हम सांसारिक विषयों को बुद्ध की दृष्टि से नहीं देख सकते।"[2]

2. **क्षणिकवाद** – प्रतीत्यसमुत्पाद से सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता भी प्रमाणित होती है। बुद्ध के अनुसार सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। किसी भी वस्तु की उत्पत्ति किसी कारण से होती है। अतः कारण को नष्ट होने पर उस वस्तु का नाश हो जाता है। बुद्ध कहते हैं "जितनी वस्तुएँ है सभी की उत्पत्ति कारणानुसार हुई है। ये सभी वस्तुएँ अनित्य हैं।"[3] क्षणिकवाद का अर्थ केवल यह नहीं है कि कोई वस्तु नित्य या शास्वत नहीं है बल्कि इसका अर्थ यह भी है कि किसी वस्तु का अस्तित्व कुछ काल तक भी नहीं रहता, बल्कि एक ही क्षण रहता है। आगे चलकर बौद्ध दार्शनिकों ने क्षणिकवाद के समर्थन में अनेक युक्तियाँ भी दी है। इनमें से एक का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है – किसी वस्तु की सत्ता का लक्ष्य है उसका अर्थ–क्रिया–कारित्व अर्थात् किसी कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति। कहा भी गया है "अर्थक्रियाकारित्वाल्लक्षणं सत्।।" शश श्रृंग की तरह जो बिल्कुल असत् है उसमें कोई कार्य नहीं निकल सकता। यदि सत्ता का यह लक्षण हो तो इससे सिद्ध होता है कि सत्ता क्षणिक है।

3. **अनात्मवाद** – संसार परिवर्तनशील है। मानुव्येतर जीव या अन्य कोई भी वस्तु परिवर्तन से रहित नहीं है। लोगों में एक धारणा है कि मनुष्य के अन्तर्गत आत्मा नाम की एक चिर स्थायी वस्तु है। शरीर के परिवर्तन होते रहने पर आत्मा हमेशा कायम रहता है। उसकी सत्ता जन्म के पूर्व तथा मृत्यु के बाद भी कायम रहती है। एक शरीर के नष्ट होने पर दूसरे शरीर में इनका प्रवेश हो जाता है। किन्तु प्रतीत्यसमुत्पाद के कारण बुद्ध परिवर्तनशील दृष्ट धर्मों के अतिरिक्त किसी दृष्ट स्थायी द्रव्य को नही मानते। अतः आत्मा को भी स्थायी नहीं मानते, इसी का नाम अनात्मवाद है। स्थिर आत्मा का अस्तित्व अस्वीकार करते हुए भी बुद्ध यह स्वीकार करते थे कि जीवन विभिन्न क्रमबद्ध और अव्यवस्थित अवस्थाओं का एक प्रवाह है। विभिन्न अवस्थाओं के संतति को ही जीवन कहते हैं। इस संतति के अंदर किसी अवस्था की उत्पत्ति उसकी पूर्ववर्ती अवस्था से होती है। इसी तरह वर्तमान अवस्था अगामी अवस्था

को उत्पन्न करती है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में पूर्वापर कारण–कार्य का संबंध रहता है। इसलिए संपूर्ण जीवन एकमय मालूम पड़ता है।

पुनर्जन्म संबंधी कठिनाई को दूर करने के लिए भी हम दीपक के दृष्टान्त को सामने रख सकते है। एक ज्योति से दूसरी ज्योति को प्रकाशित किया जा सकता है। किन्तु दोनों ज्योतियाँ एक नहीं समझी जा सकती। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे से पृथक है। उनमें केवल कारण–कार्य का संबंध है। इसी तरह वर्तमान जीवन की अंतिम अवस्था से भविष्य जीवन की प्रथम अवस्था की उत्पत्ति हो सकती है। किंतु दोनों पृथक जीवन होंगे। इस तरह पुनर्जन्म संभव है। पुनर्जन्म का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि आत्मा नित्य है और एक शरीर से दूसरे शरीर में उसका प्रवेश हो सकता है। बौद्ध दर्शन विलियम जेम्स के मत की तरह, विज्ञान प्रवाह हो मानता है। वर्तमान मानसिक अवस्था का कारण पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था है। इसलिए पूर्ववर्ती अवस्था का प्रभाव वर्तमान अवस्था पर अवश्य पड़ता है। इस तरह बिना आत्मा में विश्वास किए ही हम स्मृति का उत्पादन कर सकते हैं। बुद्ध बराबर अपने शिष्यों से आग्रह करते थे कि आत्मा के संबंध में मिथ्या विचारों का परित्याग करें। जो आत्मा का यथार्थ स्वरूप नहीं समझते हैं उन्हीं का इसके संबंध में भ्रांत विचार रहता है। ऐसे व्यक्ति आत्मा को सत्य मानकर उससे आसक्त होते हैं। उनकी आकांक्षा रहती है कि मोक्ष प्राप्त कर आत्मा को सुखी बनावें।

बुद्ध कहते हैं कि किसी अदृष्ट तथा कल्पित सुन्दरी रमणी से प्रेम रखना जैसा हास्यास्पद है वैसा ही अदृष्ट और अप्रमाणित आत्मा से प्रेम रखना भी हास्यास्पद है। आत्मा के प्रति अनुराग रखना मानों एक ऐसे प्रासाद पर चढ़ने के लिए सीढ़ी तैयार करना है जिस प्रासाद को किसी ने कभी देखा तक नहीं।[4]

मनुष्य केवल एक समष्टि का नाम है। जिस तरह चक्र, धूरी, सारथी, ध्वज आदि के समूह को रथ कहते हैं, उसी तरह वाह्य रूपयुक्त शरीर, मानसिक अवस्थाएँ और रूपहीन संज्ञा के समूह या संघात को मनुष्य कहते हैं।

जब तक इनकी समष्टि कायम रहती है तभी तक मनुष्य का अस्तित्व रहता है और जब यह नष्ट हो जाती है तो मनुष्य का अंत हो जाता है। संघात के अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है।

संदर्भ–सूची :

1. संयुक्त निकाय, 22
2. महानिदान सुत्त
3. महापरिनिर्वाण सुत्त
4. पाट्ठपाद सुत्त